व्यापारी के पुत्र की कहानी

किसी नगर में सागर दत्त नाम का एक व्यापारी रहता था। उसके लडके ने एक बार सौ रुपए में बिकने वाली एक पुस्तक खरीदी। उस पुस्तक में केवल एक श्लोक लिखा था - जो वस्तु जिसको मिलने वाली होती है, वह उसे अवश्य मिलती है। उस वस्तु की प्राप्ति को विधाता भी नहीं रोक सकता। अतएव मैं किसी वस्तु के विनष्ट हो जाने पर न दुखी होता हूं और न किसी वस्तु के अनायास मिल जाने पर आश्चर्य ही करता हूं। क्योंकि जो वस्तु दूसरों को मिलने वाली होगी, वह हमें नहीं मिल सकती और जो हमें मिलने वाली है, वह दूसरों को नहीं मिल सकती।

उस पुस्तक को देखकर सागर दत्त ने अपने पुत्र से पूछा - 'तुमने इस पुस्तक को कितने में खरीदा है?' पुत्र ने उत्तर दिया- 'एक सौ रुपए में।'

अपने पुत्र से पुस्तक का मूल्य जानकर सागर दत्त कुपित हो गया। वह क्रोध से बोला - 'अरे मूर्ख ! जब तुम लिखे हुए एक श्लोक को एक सौ रुपए में खरीदते हो तो तुम अपनी बुद्धि से क्या धन कमाओगे ? तुम जैसे मूर्ख को मैं अब अपने घर में नहीं रखूंगा।'

सागर दत्त का पुत्र अपमानित होकर घर से निकल पडा। वह एक नगर में पहुंचा। लोग जब उसका नाम पूछते तो वह अपना नाम प्राप्तव्य - अर्थ ही बतलाता। इस प्रकार वह 'प्राप्तव्य-अर्थ' के नाम से पहचाना जाने लगा। कुछ दिनों बाद नगर में एक उत्सव मनाया गया। नगर की राजकुमारी चंद्रावती अपनी सहेली के साथ उत्सव की शोभा देखने निकली। इस प्रकार जब वह नगर का भ्रमण कर रही थी तो किसी देश का राजकुमार उसकी दृष्टि में आ गया। वह उस पर मुग्ध हो गई और अपनी सहेली से बोली - 'सखि ! जिस प्रकार भी हो सके, इस राजकुमार से मेरा समागम कराने का प्रयास करो।'

राजकुमारी की सहेली तत्काल उस राजकुमार के पास पहुंची और उससे बोली - मुझे राजकुमारी चंद्रावती ने आपके पास भेजा है। उनका कहना है कि आपको देखकर उनकी दशा बहुत शोचनीय हो गई है। आप तुरंत उनके पास न गए तो मरने के अतिरिक्त उनके लिए अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाएगा।' इस पर उस राजपुत्र ने कहा- "यदि ऐसा है तो बताओ कि मैं उनके पास किस समय और किस प्रकार पहुंच सकता हूं ?'

राजकुमारी की सहेली बोली -"रात्रि के समय उसके शयनकक्ष में चमडे की एक मजबूत रस्सी लटकी हुई मिलेगी, आप उस पर चढकर राजकुमारी के कक्ष में पहुंच जाना।"

इतना बताकर राजकुमारी की सहेली तो वापस लौट गई, और राजकुमार रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। किंतु रात हो जाने पर कुछ सोचकर उस राजपुत्र ने राजकुमारी के कक्ष में जाना एकाएक स्थगित कर दिया। संयोग की बात है कि व्यापारी पुत्र 'प्रातव्य-अर्थ' उधर से ही निकल रहा था। उसने रस्सी लटकी देखी तो वह उस पर चढकर राजकुमारी के कक्ष में पहुंच गया। राजपुत्री ने भी उसको राजकुमार समझ उसका खूब स्वागत - सत्कार किया, उसको स्वादिष्ट भोजन खिलाया और अपनी शय्या पर उसे लिटाकर स्वयं भी लेट गई।

व्यापारीपुत्र के स्पर्श से रोमांचित होकर उस राजकुमारी ने कहा - "मैं आपके दर्शनमात्र से ही अनुरक्त होकर आपको अपना हृदय दे बैठी हूं। अब आपको छोडकर किसी और को पति रूप में वरण नहीं करूंगी।'

व्यापारीपुत्र कुछ नहीं बोला। वह शांत पडा रहा। इस पर राजकुमारी ने कहा - 'आप मुझसे बोल क्यों नहीं रहे हैं, क्या बात है ?' तब व्यापारीपुत्र बोला - 'मनुष्य प्राप्तक वस्तु को प्राप्त कर ही लेता है।' यह सुनकर राजपुत्री को संदेह हो गया। उसने तत्काल उसे अपने शयनकक्ष से बाहर भगा दिया। व्यापारीपुत्र वहां से निकलकर एक जीर्ण - शीर्ण मंदिर में विश्राम करने चला गया। संयोग की बात है कि नगररक्षक अपनी प्रेमिका से मिलने उसी मंदिर में आया हुआ

था। उसे देखकर उसने पूछा - “आप कौन हैं?’ व्यापारीपुत्र बोला - ‘मनुष्य अपने प्राप्तव्य अर्थ को ही प्राप्त करता है।’ नगररक्षक बोला- “यह तो निर्जन स्थान है। आप मेरे स्थान पर जाकर सो जाइए।’ व्यापारीपुत्र ने उसकी बात को स्वीकार तो कर लिया, किंतु अर्द्धनिद्रित होने के कारण भूल से वह उस स्थान पर न जाकर किसी अन्य स्थान पर जा पहुंचा।

उस नगररक्षक की कन्या विनयवती भी किसी पुरुष के प्रेम में फंसी हुई थी। उसने उस स्थान पर आने का अपने प्रेमी को संकेत दिया हुआ था, जहां कि प्रातव्य-अर्थ पहुंच गया था। विनयवती वहां सोई हुई थी। उसको आते देखकर विनयवती ने यही समझा कि उसका प्रेमी आ गया है। वह प्रसन्न होकर उसका स्वागत - सत्कार करने लगी। जब वह व्यापारीपुत्र के साथ अपनी शैया पर सोई तो उसने पूछा - क्या बात है, आप अब भी मुझसे निश्चिंत होकर बातचीत नहीं कर रहे हैं?’ व्यापारीपुत्र ने वही वाक्य दोहरा दिया-‘मनुष्य अपने प्राप्तव्य-अर्थ को ही प्राप्त करता है।’ विनयवती समझ गई कि बिना विचारे करने का उसको यह फल मिल रहा है। उसने तुरंत उस व्यापारीपुत्र को घर से बाहर जाने का रास्ता दिखा दिया। व्यापारीपुत्र एक बार फिर सडक पर आ गया। तभी उसे सामने से आती एक बारात दिखाई दी। वरकीर्ति नामक वर बडी धूमधाम से अपनी बारात लेकर जा रहा था। वह भी उस बारात में शामिल होकर उनके साथ-साथ चलने लगा। बारात अपने स्थान पर पहुंची, उसका खूब स्वागत - सत्कार हुआ।

विवाह का मुहूर्त होने पर सेठ की कन्या सज-धजकर विवाह-मंडप के समीप आई। उसी क्षण एक मदमस्त हाथी अपने महावत को मारकर भागता हुआ उधर आ पहुंचा। उसे देखकर भय के कारण सभी बाराती वर को लेकर वहां से भाग गए। कन्या-पक्ष के लोग भी घबराकर घरों में घुस गए। कन्या उस स्थान पर अकेली रह गई। कन्या को भयभीत देखकर ‘प्राप्तव्य-अर्थ’ ने उसे सांत्वना दी- ‘डरो मत। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।’ यह कहकर उसने एक हाथ से उस कन्या को संभाला और दूसरे हाथ में एक डंडा लेकर हाथी पर पिल पडा। डंडे की चोट से भयभीत होकर वह हाथी सहसा वहां से भाग निकला। हाथी के चले जाने पर

वरकीर्ति अपनी बारात के साथ वापस लौटा, किंतु तब तक विवाह का मुहूर्त निकल चुका था। उसने देखा कि उसकी वधूकिसी अन्य नौजवान के साथ सटकर खडी हुई है और नौजवान ने उसका हाथ थामा हुआ है। यह देखकर उसे क्रोध आ गया और अपने ससुर से बोला- “आपने यह उचित नहीं किया। अपनी कन्या का हाथ मेरे हाथ में देने के स्थान पर किसी अन्य के हाथ में दे दिया है।” उसकी बात सुनकर सेठ बोला- ‘मुझे स्वयं भी नहीं मालूम कि यह घटना कैसे घटी। हाथी के डर से मैं भी तुम सब लोगों के साथ यहां से भाग गया था, अभी-अभी वापस लौटा हूं।’

सेठ की बेटी बोली- पिताजी। इन्होंने ही मुझे मृत्यु से बचाया है, अत: अब मैं इनको छोडकर किसी अन्य के साथ विवाह नहीं करूंगी। इस प्रकार विवाद बढ गया, और रात्रि भी समाप्त हो गई। प्रात:काल वहां भीड इकट्टी हो गई। राजकुमारी भी वहां पहुंच गई थी। विनयवती ने सुना तो वह भी तमाशा देखने वहां जा पहुंची। स्वयं राजा भी इस विवाद की बात सुनकर वहां चला आया। उसने व्यापारीपुत्र से कहा -‘युवक ! तुम निश्चिंत होकर सारी घटना का विवरण मुझे सुनाओ|' व्यापारीपुत्र ने उत्तर में यही कहा-‘मनुष्य प्राप्तव्य अर्थ को ही प्राप्त करता है।' उसकी बात सुनकर राजपुत्री बोली-विधाता भी उसको नहीं रोक सकता।’ तब विनयवती कहने लगी-‘इसलिए मैं विगत बात पर पश्चाताप नहीं करती और मुझको उस पर कोई आश्चर्य नहीं होता।’ यह सुनकर विवाह-मंडप में आई सेठ की कन्या बोली - ‘जो वस्तु मेरी है, वह दूसरों की नहीं हो सकती।’

राजा के लिए यह सब पहेली बन गया था। उसने सब कन्याओं से पृथक-पृथक सारी बात सुनी। और जब वह आश्वस्त हो गया तो उसने सबको अभयदान दिया। उसने अपनी कन्या को सम्पूर्ण अलंकारों से युक्त करके, एक हजार ग्रामों के साथ अत्यंत आदरपूर्वक ‘प्राप्तव्य - अर्थ को समर्पित कर दिया। इतना ही नहीं उसने उसे अपना पुत्र भी मान लिया। इस प्रकार उसने उस व्यापारीपुत्र को युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। नगररक्षक ने भी उसी प्रकार अपनी कन्या विनयवती उस व्यापारीपुत्र को सौंप दी। तीनों कन्याओं से विवाह कर व्यापारीपुत्र

आनंदपूर्वक राजमहल में रहने लगा। बाद में उसने अपने समस्त परिवार को भी वहां बुला लिया।

सीख : दाने दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम

यह कथा समाप्त कर हिरण्यक ने कहा-'इसलिए मैं कहता हूं कि मनुष्य अपने प्रातव्य अर्थ को ही प्राप्त करता है। इस प्रकार अनुचरों से खिन्न होकर मैं आपके मित्र लघुपतनक के साथ यहां चला आया हूं। यही मेरे वैराग्य का कारण है।'

हिरण्यक की बात सुनकर मंथरक कछुए ने कहा - मित्र हिरण्यक ! तुम नष्ट धन की चिंता मत करो ! जवानी और धन का उपयोग तो क्षणिक ही होता | पहले तो धन के अर्जन में ही कष्ट होता है और बाद में उसके संरक्षण में भी कष्ट होता है। जितने कष्टों से मनुष्य धन का संचय करता है उसके शतांश कष्टों से भी यदि वह धर्म का संचय करे तो उसे मोक्ष मिल जाता है। तुम विदेश-प्रवास का भी दुख मत करो, क्योंकि व्यवसायी के लिए कोई स्थान दूर नहीं होता और विद्वान व्यक्ति के लिए कोई स्थान परदेश नहीं होता। साथ ही किसी प्रियवादी व्यक्ति के लिए कोई व्यक्ति पराया नहीं होता। तुम निर्भय होकर यहां रहो। हम तीनों अच्छे मित्रों की भांति मिलकर जीवन-निर्वाह करेंगे। रही धन जाने की बात, तो धन कमाना तो भाग्य पर निर्भर करता है। भाग्य में न हो तो संचित धन भी नष्ट हो जाता है। अभागा आदमी तो धन को संचित करके भी उसका उपभोग उसी तरह नहीं कर पाता, जिस तरह सोमिलक नहीं कर पाया था। हिरण्यक ने पूछा - 'यह सोमिलक कौन था ?' तब मंथरक कछुए ने उसे यह कथा सुनाई।

व्यापारी के पुत्र की कहानी

किसी नगर में सागर दत्त नाम का एक व्यापारी रहता था। उसके लड़के ने एक बार सौ रुपए में बिकने वाली एक पुस्तक खरीदी। उस पुस्तक में केवल एक श्लोक लिखा था – जो वस्तु जिसके मिलने वाली होती है, वह उसे अवश्य मिलती है। उस वस्तु की प्राप्ति को विधाता भी नहीं रोक सकता। अतएव मैं किसी वस्तु के विनष्ट होने पर न दुःखी होता हूं, और न किसी वस्तु के अनायास मिल जाने पर आश्चर्य ही करता हूं, क्योंकि जो वस्तु हमारे मिलने वाली नहीं, वह हमें नहीं मिल सकती और जो हमें मिलने वाली है, वह दूसरों को नहीं मिल सकती।

उस पुस्तक को देखकर सागर दत्त ने अपने पुत्र से पूछा – 'तुमने इस पुस्तक को कितने में खरीदा है?' पुत्र ने उत्तर दिया- 'एक सौ रुपए में।'

अपने पुत्र से पुस्तक का मूल्य सुनकर सागर दत्त कुपित हो गया। वह क्रोध में बोला – 'अरे मूर्ख ! जब तुम लिखे हुए एक श्लोक को एक सौ रुपए में खरीदते हो तो तुम अपनी बुद्धि से धन कैसे कमाओगे? तुम जैसे मूर्ख को मैं अब अपने घर में नहीं रखूंगा।'

सागर दत्त का पुत्र अपमानित होकर घर से निकल पड़ा। वह एक नगर में पहुंचा। लोग जब उसका नाम पूछते तो वह अपना नाम प्राप्तव्य-अर्थ ही बतलाता। इस प्रकार वह 'प्राप्तव्य-अर्थ' के नाम से पहचाना जाने लगा। कुछ दिन बाद नगर में एक उत्सव मनाया गया। नगर की राजकुमारी चंद्रवती अपनी सहेली के साथ उत्सव की शोभा देखने निकली। इस प्रकार जब वह नगर का भ्रमण कर रही थी तो किसी देश का राजकुमार उसकी दृष्टि में आ गया। वह उस पर मोहित हो गई और अपनी सहेली से बोली – 'सखि ! जिस प्रकार भी हो सके, इस राजकुमार से मेरा समागम कराने का प्रयास करो।'

राजकुमारी की सहेली तत्काल उस राजकुमार के पास पहुंची और उससे बोली – मुझे राजकुमारी चंद्रवती ने आपके पास भेजा है। उनका कहना है कि आपको देखकर उनकी दशा बहुत शोचनीय हो गई है। आप तुरंत उनके पास न गए तो मरने के अतिरिक्त उनके लिए अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाएगा।' इस पर उस राजपुत्र ने कहा- "यदि ऐसा है तो बताओ कि मैं उनके पास किस समय और किस प्रकार पहुंच सकता हूं?'

राजकुमारी की सहेली बोली –"रात्रि के समय उसके शयनकक्ष में झरोखे की एक मजबूत रस्सी लटकी हुई मिलेगी, आप उस पर चढ़कर राजकुमारी के कक्ष में पहुंच जाना।"

इतना कहकर राजकुमारी की सहेली तो वापस लौट गई, और राजकुमार रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। किंतु रात होने पर कुछ सोचकर उस राजपुत्र ने राजकुमारी के कक्ष में जाना एकाएक स्थगित कर दिया। संयोग की बात है कि व्यापारी पुत्र 'प्राप्तव्य-अर्थ' उधर से ही निकल रहा था। उसने रस्सी लटकी देखी तो वह उस पर चढ़कर राजकुमारी के कक्ष में पहुंच गया। राजपुत्री ने भी उसको राजकुमार समझकर उसका खूब स्वागत-सत्कार किया, उसको स्वादिष्ट भोजन खिलाया और अपनी शय्या पर उसे लिटाकर स्वयं भी लेट गई।

व्यापारीपुत्र के मुँह से रोमांचित होकर उस राजकुमारी ने कहा – "मैं आपके दर्शनमात्र से ही अनुरक्त होकर आपको अपना हृदय दे बैठी हूँ। अब आपको छोड़कर किसी और को पति रूप में वरण नहीं करूँगी।'

व्यापारीपुत्र कुछ नहीं बोला। वह शांत पड़ा रहा। उस पर राजकुमारी ने कहा -'आप मुझसे बोल क्यों नहीं रहे हैं, क्या बात है?' तब व्यापारीपुत्र बोला – 'मनुष्य प्राप्तव्य वस्तु को प्राप्त कर ही लेता है।' यह सुनकर राजपुत्री को संदेह हो गया। उसने तत्काल उसे अपने शयनकक्ष से बाहर भगा दिया। व्यापारीपुत्र वहाँ से निकलकर एक जीर्ण – शीर्ण मंदिर में विश्राम करने चला गया। संयोग की बात है कि नगररक्षक अपनी प्रेमिका से मिलने उसी मंदिर में आया हुआ था। उसे देखकर उसने पूछा – "आप कौन हैं?" व्यापारीपुत्र बोला – 'मनुष्य अपने प्राप्तव्य-अर्थ को ही प्राप्त करता है।' नगररक्षक बोला- "यह तो निर्जन स्थान है। आप मेरे स्थान पर जाकर सो जाइए।' व्यापारीपुत्र ने उसकी बात को स्वीकार तो कर लिया, किंतु अनिश्चित होने के कारण भूल से वह उस स्थान पर न जाकर किसी अन्य स्थान पर जा पहुँचा।

उस नगररक्षक की कन्या विनयवती भी किसी पुरुष के प्रेम में फँसी हुई थी। उसने उस स्थान पर आने का अपने प्रेमी को संकेत दिया हुआ था, जहाँ कि प्राप्तव्य-अर्थ पहुँच गया था। विनयवती वहाँ सोई हुई थी। उसको आते देखकर विनयवती ने ऐसा समझा कि उसका प्रेमी आ गया है। वह प्रसन्न होकर उसका स्वागत – सत्कार करने लगी। जब वह व्यापारीपुत्र के साथ अपनी सेज पर सोई तो उसने पूछा – क्या बात है, आप अब भी मुझसे निःशंक होकर बातचीत नहीं कर रहे हैं? व्यापारीपुत्र ने वही वाक्य दोहरा दिया-'मनुष्य अपने प्राप्तव्य-अर्थ को ही प्राप्त करता है।' विनयवती समझ गई कि बिना विचारे करने का उसको यह फल मिल रहा है। उसने तुरंत उस व्यापारीपुत्र को घर से बाहर जाने का रास्ता दिखा दिया। व्यापारीपुत्र एक बार फिर सड़क पर आ गया। तभी उसे सामने से आती एक बारात दिखाई दी। वरकीर्ति नामक वर बड़ी धूमधाम से अपनी बारात लेकर जा रहा था। वह भी उस बारात में शामिल होकर उनके साथ–साथ चलने लगा। बारात अपने स्थान पर पहुँची, उसका खूब स्वागत – सत्कार हुआ।

विवाह का मुहूर्त होने पर सेठ की कन्या सज–धजकर विवाह-मंडप के समीप आई। उसी क्षण एक मदमस्त हाथी अपने महावत को मारकर भागता हुआ उधर आ पहुँचा। उसे देखकर भय के कारण सभी बाराती वर को लेकर वहाँ से भाग गए। कन्या–पक्ष के लोग भी घबराकर घर में घुस गए। कन्या उस स्थान पर अकेली रह गई। कन्या को भयभीत देखकर 'प्राप्तव्य-अर्थ' ने उसे सांत्वना दी-'डर मत। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' यह कहकर उसने एक हाथ से उस कन्या को संभाला और दूसरे हाथ में एक डंडा लेकर हाथी पर पिल पड़ा। डंडे की चोटों से भयभीत होकर वह हाथी सहसा वहाँ से भाग निकला। हाथी के चले जाने पर वरकीर्ति अपनी बारात के साथ वापस लौटे, किंतु तब तक विवाह का मुहूर्त निकल चुका था। उसने देखा कि उसकी वधू किसी अन्य नौजवान के साथ सटकर खड़ी हुई है और नौजवान ने उसका हाथ थामा हुआ है। यह देखकर उसे क्रोध आ गया और अपने ससुर से बोला– "आपने यह उचित नहीं किया। अपनी कन्या का हाथ मेरे हाथ में देने के स्थान पर किसी अन्य के हाथ में दे दिया है।" उसकी बात सुनकर सेठ बोला– 'मुझे स्वयं ही नहीं मालूम कि यह घटना कैसे घटी। हाथी के डर से मैं भी तुम सब लोगों के साथ यहाँ से भाग गया था, अभी–अभी वापस लौटा हूँ।'

मठ की गयी गली- पिताली। उनन्हें ही भाज मेठ्म गयाया ह, अतः मग भतेनक छेड़ेकर किभी मनु्क के साथ विवाह नहीं करूँगी। उस प्रकार विवाट गढ़ गया, और रात्रि भी सभाप्त हो गयी। प्रातःकाल वहाँ भीड़ इकट्ठी हो गयी। राजकुमारी भी वहाँ पहुँच गयी थी। विनयवती ने सेना उ वेह भी उभासा टापिन वेहाँ ए पहुँची। मब्रं ाराए भी उस विवाट की गाउ मनुकर वहाँ शला सुया। उसने व्यापारीपुत्र से कहा -‘युवक ! तुम निश्चिंत होकर सारी घटना का विवरण आज सेनाओ|' व्यापारीपुत्र ने उत्तर में यही कहा-‘मनुष्य प्रयत्न सात्र कर ही प्राप्त करता है।’ उसकी गाउ मनुकर राजपुत्री गली-विणउ ही उसके नहीं रोके सकता।’ उग विनयवती कहने लगी-‘इसलिए मैं विगउ गाउ पर पश्चाताप नहीं करती और आगे के उस पर कोई सुसंधि नहीं होती।’ यह मनुकर विवाह-मंडप में सुरा मठ की कन्या गली – ‘ए वेमनुभरी ह, वेह टूसरे की नहीं हो सकती।’

राए के लिए यह मग पहली गन गया था। उसने मेग कन्याओं में पृथक-पृथक सारी गाउ मनी। और एग वह सुसम्बन्ध हो गया तो उसने मेग के मेहयसादान दिया। उसने अपनी कन्या के ससन्न सलंकार में युक्त करके, एक हजार गाँव के साथ अतीव सुन्दरपूर्वक ‘प्राप्तव्य– मनु के मेमर्पित कर दिया। इतना ही नहीं उसने उस अपना पुत्र ही मान लिया। इस प्रकार उसने उस व्यापारीपुत्र के युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। नगररक्षक ने भी उसी प्रकार अपनी कन्या विनयवती उस व्यापारीपुत्र के सौंप दी। तीन कन्याओं में विवाह कर व्यापारीपुत्र सुनंदपूर्वक राजमहल में रहने लगा। बाद में उसने अपने समस्त परिवार के भी वहाँ बुला लिया।

सीख : दान देने पर मिलता है पिान वेाल केा लाभ

यह कथा समाप्त कर दिगंबर ने कहा-‘इसलिए मैं कहता हूँ कि मनुष्य अपने प्रारब्ध मनु के ही प्राप्त करता है। इस प्रकार अनायास ही मिल जाने से मैं सैपक मित्र लक्ष्मीपुत्रक के साथ यहाँ चला सुया हूँ, यही मेरे वैराग्य का कारण है।’

दिगंबर की बात सुनकर संपादक कहने ने कहा – मित्र दिगंबर ! तुम नक्षत्र की चिंता मत करो ! सेवानी और धन का उपयोग तो सौनिक ही होता | पहले तो धन के अर्जन में ही कष्ट होता है और बाद में उसके संरक्षण में भी कष्ट होता है। जितने कष्ट से मनुष्य धन का संचय करता है उसके सौतम कष्ट से ही यदि वह धर्म का संचय करे तो उस मोक्ष मिल जाता है। तुम विदेश-प्रवास का भी दुःख मत करो, क्योंकि बुद्धिमानों के लिए कोई स्थान दूर नहीं होता और विद्वान व्यक्ति के लिए कोई स्थान पराया नहीं होता। साथ ही किसी प्रियवादी व्यक्ति के लिए कोई व्यक्ति पराया नहीं होता। तुम निश्चिंत होकर यहाँ रहो। हम तीन मित्रों की भाँति मिलकर जीवन-निर्वाह करेंगे। मेरी धन एन की बात, तो धन कमाना तो भाग्य पर निर्भर करता है। भाग्य से ही संचित धन भी नष्ट हो जाता है। अभागा मनुष्य तो धन के संचित करके भी उसका उपभोग उसी तरह नहीं कर पाता, जिस तरह सौमिलक नहीं कर पाया था। दिगंबर ने पूछा – ‘यह सोमिलक कौन था ?’ तब संपादक कछुए ने उसे यह कथा सुनाई।

अनुवाद - उर्मिला जैन